



वचनामृत प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता

मौखिक प्रश्नोत्तरी के लिए वचनामृत के विधान

- 1. ग.म.62 :** भगवान के भक्त को जिस-जिस प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़ता है, उन दुःखों को देनेवाला काल, कर्म और माया में से कोई भी नहीं है, किन्तु स्वयं भगवान ही अपने भक्त का धैर्य देखने के लिए इन दुःखों को प्रेरित करते हैं। जैसे कोई पुरुष पर्दे के पीछे रहकर आगे की ओर देखता है, वैसे ही भगवान भी भक्त के हृदय में रहकर उसके धैर्य को देखते रहते हैं। लेकिन काल, कर्म और माया की क्या मजाल है कि वे भगवान के भक्त को पीड़ित कर सकें? वह तो भगवान की ही ऐसी इच्छा है, ऐसा समझकर भगवान के भक्त को आनंदमग्न रहना।
- 2. ग.म.38 :** संसारी जीव को कोई धन देनेवाला या पुत्र देनेवाला मिल जाए, तो उसमें तुरन्त प्रतीति आ जाती है, किन्तु भगवान के भक्त को जन्त्र-मन्त्र, नाटक-नौटंकी आदि किसी के भी प्रति रुचि नहीं होती। यदि हरिभक्त हो और वह जन्त्र-मन्त्र में प्रतीति रखता हो, तो उसे सत्संगी होने पर भी अर्ध विमुख ही समझना चाहिए।
- 3. ग.अं. 25 :** और ऐसा मत समझें कि जो अनेक उपचारों द्वारा भक्ति करता है उसी पर भगवान प्रसन्न हो जाते हैं और गरीब पर प्रसन्न नहीं होते; भगवान तो बहुत दयालु हैं, यदि कोई गरीब भक्त हो, वह भी यदि श्रद्धापूर्वक जल, पत्र, फल, फूल भगवान के लिए अर्पित करता है तो वे इतने पर ही प्रसन्न हो जाते हैं।
- 4. ग.प्र.34 :** परमेश्वर के वचनों का उल्लंघन करके इधर-उधर भटकता है, तब वह क्लेश को पाता है। यदि वह आज्ञा के अनुसार रहता है, तो उसे भगवान का जो आनन्द है, वही आनन्द प्राप्त होता है। भगवान के भक्त होते हैं, उनको जितना भी दुःख होता है, वह तुच्छ पदार्थों के लिए भगवान की आज्ञा का उल्लंघन किए जाने के कारण ही होता है और उसे जितना सुख होता है, वह भगवान की आज्ञा का पालन करने के कारण ही होता है।
- 5. ग.म.35 :** जगत में एक बात होती है कि, 'मन होय चंगा तो कठौती में गंगा।' परन्तु यह बात मिथ्या है। क्योंकि चाहे कैसा भी समाधिनिष्ठ अथवा विचारवान पुरुष हो, फिर भी वह स्त्रियों का सहवास करने लगे, तो उसका धर्म किसी भी प्रकार से नहीं रह सकता। तथा चाहे कैसी ही धर्माचरणवाली स्त्री हो, उसका यदि परपुरुष के साथ सहवास हो जाए, तो उसका भी धर्म नहीं ही रहता। इस तरह स्त्री-पुरुष का परस्पर सहवास होने पर भी उनका धर्म रहे, ऐसी तो आशा ही नहीं रखनी चाहिए! यह बात सौ प्रतिशत सत्य ही है, इसमें किसी भी तरह का संशय नहीं रखना चाहिए।
- 6. कारि.9 :** जो भगवान की महिमा को जानता हो, वह तो भगवान के सम्बंध को प्राप्त हुए पशु-पक्षियों तथा वृक्षलता आदि तक को भी जब देवतुल्य माने, तब जो मनुष्य हो और भगवान की भक्ति करता हो तथा व्रत-नियम का पालन करता हो, एवं भगवान का वह नामस्मरण करता हो उसको तो देवसदृश ही मानेगा, तथा उसमें कोई दोष नहीं देखेगा, इसके लिए कहना ही क्या? अतः जो पुरुष भगवान की महिमा को समझता है, उसका भगवान के भक्त के साथ कभी वैर नहीं होता, परन्तु जो भगवान के माहात्म्य को नहीं जानता, उसका भगवद्भक्त के साथ वैर जरूर हो जाता है।
- 7. ग.प्र.4 :** जिससे ईर्ष्या हो, उसके गुणों का ग्रहण करें और अपने अवगुणों का परित्याग कर दें। यदि ऐसा न हो सके तो भगवान के भक्तों को उसके प्रति द्रोह उत्पन्न करनेवाली ईर्ष्या का सर्वथा परित्याग कर दें।
- 8. ग.प्र.58 :** ऐसा दृढ़ हरिभक्त होने का केवल यही उपाय है कि परमेश्वर के दास का गुलाम होकर रहे, और यह समझे कि 'ये समस्त भक्त बड़े हैं और मैं सबसे न्यून हूँ।' ऐसा जानकर वह हरिभक्त का दासानुदास होकर रहे।
- 9. ग.अं.6 :** जीवमात्र का ऐसा ही स्वभाव है कि वह यदि कुछ अपराध के दायरे में आ गया, तो वह बोल पड़ता है कि 'मुझे किसी अन्य मनुष्य ने भुलावे में डाल दिया, इसी कारण मुझसे यह भूल हो गई, अन्यथा मुझमें

कोई दोष नहीं है।' परन्तु ऐसा कहनेवाला महामूर्ख है, क्योंकि कोई कहेगा कि 'तू कुएँ में गिर पड़', तो क्या उसके कहने से उसे कुएँ में गिर जाना चाहिए? इसलिए, दोष तो उस मनुष्य का ही है, जो उल्टा काम करता है, और दोष किसी और के सिर मढ़ता है! इसी प्रकार, इन्द्रियों और अन्तःकरण को दोषित ठहराना वह भी जीव की मूर्खता ही है।

10. **सारंग.18** : मूर्ख पुरुष को जब उद्वेग होता है, तब वह या तो सोया करता है या रोता है या किसी से झगड़ा करने लगता है अथवा उपवास करता है। इन चार प्रकार से अपनी व्यग्रता को टालने का प्रयास करता है। ऐसा करने पर भी यदि भारी उद्विग्नता बनी रही, तो आखिर में वह आत्महत्या भी कर लेता है। इस प्रकार मूर्ख पुरुष अपनी बेचैनी को दूर करने का उपाय करता है। परन्तु, ऐसा करने से दुःख नहीं मिटता, और कुस्वभाव भी नहीं मिटते। यदि वह समझपूर्वक दुःख तथा कुस्वभाव को टालना चाहे, तो वे टल सकते हैं। इसलिए, विवेकशील पुरुष ही सुखी होता है।
11. **ग.प्र.70** : सत्संग अपने जीव के कल्याण के लिए ही करना। किन्तु किसी प्रकार के भौतिक पदार्थों की इच्छा तो रखनी ही नहीं। क्योंकि अगर घर में दस मनुष्य हों उन सभी का मृत्युकाल उपस्थित हो गया, तब उनमें से एक भी आदमी बच गया तो क्या कम है? अथवा प्रारब्ध में यदि भिक्षा मांगने का योग हो और रोटियाँ खाने को मिलें, तो क्या कम है? सबकुछ जाने वाला था, उसमें से यदि बच गया है, तो वह पर्याप्त है, ऐसा मानना। इसप्रकार अत्यधिक दुःख आनेवाला हो, वह परमेश्वर के आश्रय को ग्रहण करने से निश्चित रूप से कम तो होता है, परन्तु जीव को यह बात समझ में नहीं आती। अन्यथा एक बात तो पक्की है कि किसी को सूली चढ़ने का योग हो, तो ऐसा दुःख केवल काँटा लगने मात्र से भी टल जाता है, इतना अन्तर भगवान के आश्रय से पड़ता है।
12. **ग.प्र.16** : 'भगवान के जिस भक्त में सत्-असत् का विवेक हो, वह अपने में विद्यमान दोषों को जान लेता है और विचार करके उन अवगुणों का परित्याग करता है। यदि सन्त में अथवा किसी सत्संगी में स्वयं को कोई दोष होने का आभास हो, तो वह उसका त्याग कर देता है और केवल उसके गुण को ही ग्रहण करता है।'
13. **ग.म.41** : 'जिसे परमेश्वर को भजना हो, उसे यदि भगवान अथवा भगवान के भक्त की सेवा-चाकरी करने का अवसर मिले, तो अपना बड़ा भाग्य मानकर सेवा करनी चाहिए। वह सेवा भी भगवान की प्रसन्नता के हेतु एवं अपने आत्मकल्याण के लिए भक्तिपूर्वक करनी चाहिए, किन्तु कोई अपनी प्रशंसा करे, ऐसी आशा से सेवा नहीं करनी चाहिए।'
14. **ग.प्र.18** : 'और पाँच इन्द्रियों द्वारा जीव जो आहार करता है, वह यदि शुद्ध आहार करेगा तो अन्तःकरण शुद्ध होगा और अन्तःकरण शुद्ध होने से निरंतर भगवान की स्मृति बनी रहेगी। यदि पंचेन्द्रियों के आहार में एक भी इन्द्रिय का आहार मलिन रहा, तो अन्तःकरण भी मलिन हो जाता है। इसलिए भगवद्भक्त को भगवान के भजन में जो भी कोई विक्षेप पड़ता है, उसका कारण पाँचों इन्द्रियों के विषय ही हैं, परन्तु अन्तःकरण नहीं है।'
15. **लोया-18** : भगवान में ऐसा दिव्यभाव नहीं मानता, तब तक उसको बात-बात में बुरा लगता है। वह भगवान में समय-समय पर गुण और दोष देखा करता है और यह समझता है कि 'भगवान इसका पक्ष लेते हैं और हमारा ध्यान नहीं रखते, इसको अधिकाधिक बुलाते हैं और हमें नहीं बुलाते, इस पर अधिक स्नेह रखते हैं, किन्तु हमसे स्नेह नहीं करते।' इस प्रकार वह गुण और दोष देखा करता है, इसी कारण उसका अन्तःकरण दिन-प्रतिदिन सत्संग से पिछड़ने लगता है और अन्त में वह विमुख हो जाता है।
16. **ग.म.55** : जैसे कांख के रोएँ में कौन अच्छा और कौन बुरा कहा जाएगा? वे तो सभी एकसमान ही हैं! वैसे ही हमारे मन में सभी मायिक पदार्थ एकसमान ही प्रतीत होते हैं।
17. **ग.अं.39** : इस देह से पृथक् आत्मा समझना। वह आत्मा न तो ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है और न किसान ही है। वह न तो किसी का लड़का है और न किसी का पिता भी है। न उसकी कोई जाति है और न ही उसका कोई रिश्ता ही है। ऐसी आत्मा तो सूर्य एवं अग्नि के समान तेजस्वी तथा ज्ञातृत्व से युक्त है।
18. **ग.प्र.24** : कभी किसी हरिभक्त का दोष दिखाई दे, तब यही समझना कि 'यद्यपि इसका स्वभाव सत्संग में शोभास्पद नहीं है, तथापि उसे सत्संग प्राप्त हुआ है, तो वह चाहे साधारण ही क्यों न हो, परन्तु वह सत्संग में पड़ा रहा है, तो उसके पूर्वजन्म का अथवा इस जन्म का संस्कार बहुत बड़ा है, अतः उसे ऐसा सत्संग मिला है।' ऐसा समझकर उसका भी अतिशय गुण ग्रहण करना चाहिए।